वास्तव में आसुरी मनोवृत्ति के कारण ही संसार में पशुओं की अप्रयोजनीय हिंसा की जा रही है। चिकनाई की उपलब्धि की सभ्य विधि दुग्ध का सेवन करना है। प्रोटीन के नाम पर पशु-वध में प्रवृत्त होना नर-पशुओं का काम है। विज्ञान से प्रमाणित है कि दाल, गेहूँ, आदि में पर्याप्त प्रोटीन रहता है।

कड़ुवे, खट्टे, अति नमकीन, बहुत गरम, तीखे और अधिक मसाले वाले पदार्थ राजस आहार की श्रेणी में आते हैं। ये दुःख के कारण हैं, क्योंकि इनके खाने से उदर में कफ बढ़ जाता है और परिणाम में रोग होते हैं। मुख्य रूप से भोजन के वे ही पदार्थ तामसी कहे जाते हैं, जो ताजे न हों। प्रसाद के अतिरिक्त अन्य जो भी पदार्थ भोजन से एक प्रहर (तीन घण्टे) पहले बनाया गया हो, वह तामसी है। इन सड़ते हुए पदार्थों में दुर्गन्ध हो जाती है। दुर्गन्ध से जहाँ तामस मनुष्य इनकी ओर आकर्षित होते हैं, वहीं सात्त्विक पुरुष इनसे घृणा करते हैं।

उच्छिष्ट भोजन उसी अवस्था में ग्रहण किया जा सकता है, जब वह श्रीभगवान् अथवा सन्त पुरुषों, विशेषतः गुरु का प्रसाद हो। अन्यथा, उच्छिष्ट भोजन को तामसी समझा जाता है और उससे रोग और दोष बढ़ते हैं। ऐसे पदार्थों में, जो तामस मनुष्यों के अति प्रिय हैं, सात्त्विक पुरुषों की न तो रुचि होती है और न वे इनका कभी स्पर्श करते हैं। वस्तुतः भगवत्-प्रसाद ही सर्वोत्तम आहार है। भगवद्गीता में श्रीभगवान् ने स्वयं कहा है कि शाक, फल, दुग्ध, अन्न आदि जो कुछ भी प्रेमभाव से उनके अर्पण किया जाता है, वे उसे अवश्य स्वीकार करते हैं: **पत्रं पुष्पं फलं तोयम्।** निःसन्देह श्रीभगवान् केवल भावग्राही हैं; परन्तु शास्त्र में प्रसाद बनाने की विधि का विधान भी है। शास्त्र-विधि से बनाया भगवत्-प्रसाद बासी होने पर भी ग्रहण किया जा सकता है; ऐसा आहार सर्वथा दिव्य होता है। अतः भोजन को सब मनुष्यों के खाने के योग्य, शुद्ध और स्वादिष्ट बनाने के लिए उसे श्रीभगवान् को निवेदित करना आवश्यक है।

अफलाकांक्षिभिर्यज्ञो विधिदृष्टो य इज्यते।
यष्टव्यमेवेति मनः समाधाय स सात्त्विकः।।११।।

अफलाकांक्षिभिः=फल को न चाहने वाले पुरुषों द्वारा; **यज्ञः**=यज्ञ; **विधि-दृष्टः**=शास्त्र-विधि के अनुसार; **यः**=जो; **इज्यते**=किया जाता है; **यष्टव्यम् एव**=यज्ञ करना ही कर्तव्य है; **इति**=ऐसे; **मनः**=मन को; **समाधाय**=निश्चय करके; **सः**=वह (यज्ञ); **सात्त्विकः**=सात्त्विक है।

अनुवाद

यज्ञों में वह यज्ञ सात्त्विक है, जो शास्त्र-विधि के अनुसार फल की इच्छा के बिना कर्तव्य मानकर किया जाता है।।११।।

तात्पर्य

सामान्यतः यज्ञ किसी न किसी स्वार्थभावना से प्रेरित होकर ही किए जाते हैं। परन्तु यहाँ उल्लेख है कि यज्ञ को निष्कामभाव से कर्तव्य समझ कर करना चाहिए।